आसान नहीं था पढ़ाई का सफर

रीता माहेश्वरी
प्रधानाध्यापिका
राजकीय प्राथमिक विद्यालय
भाटियों की ढाणी, कपरऊ
बाड़मेर, राजस्थान

सहायक अध्यापिका – सुनीता मीणा
भोजन माता – इंदिरा देवी
नामांकन – 32

'उम्मीद ही तो थी जिसका दामन थामे–थामे यहाँ तक आ पहुंची हूँ।' चिलचिलाती गर्मी में इतवार के दिन कुछ नया सीखने की इच्छा के चलते शिक्षिका रीता माहेश्वरी को सुनना किसी फिल्म की रील का खुलते जाना सा मालूम हो रहा था। वो शिक्षिका हैं, बाड़मेर के प्राथमिक विद्यालय भाटियों की ढाणी में। सर पर पल्ला लिए वो बहुत आत्मविश्वास से अपनी बात रखती हैं। महानगरों में रहने वाले लोगों को, फेमिनिज्म की बातें करने वालों को, कहानियाँ–कवितायें लिखने वालों को ध्यान लगाकर रीता माहेश्वरी की कहानी सुननी चाहिए।

रीता माहेश्वरी अपनी कहानी सुनाना शुरू करती हैं, 'बात 1989 की है, मैंने इस साल दसवीं पास की थी। मुझे पढ़ना बहुत अच्छा लगता था। मै खूब पढ़ना चाहती थी। लेकिन दसवीं के बाद आगे की पढ़ाई के लिए पापा ने मना कर दिया। पापा के कारण भी वाजिब ही रहे होंगे। हम सात बहनें थीं। दादी काफी बीमार रहा करती थीं। कमाने वाले पापा अकेले थे। पापा को लगा कि अगर मुझे पढ़ाया तो बाकियों को भी पढ़ाना होगा, और एक अकेले पापा भला किस–किस के पीछे भागते फिरेंगे। लेकिन मेरे मन में भी यही बात थी कि अगर मैंने पढ़ाई छोड़ दी तो बाकी बहनों की पढ़ाई छूटना भी निश्चित ही है। इसलिए मुझे कुछ तो करना था। मैंने मन ही मन ठान लिया कि चाहे कुछ भी हो, कितनी ही मुश्किलें आये, मैं पढ़ना तो जारी रखूंगी ही, अपने लिए भी और अपनी बहनों के लिए भी।

यह आसान तो नहीं था लेकिन मुश्किलें मुझे डराती नहीं थीं, लुभाती थीं। मैंने आगे पढ़ने की इच्छा रखने वाली अपनी जैसी लड़कियों से बात की और उनकी कच्ची इच्छाओं को हिम्मत दी। ज्यादातर लड़कियां घरवालों के दबाव में थीं। लेकिन उनकी आँखों में आगे पढ़ने का सपना चमकता था। इसी बीच मेरी मुलाकात मंजू दीदी से हुई। मंजू दीदी दो साल पहले हाई स्कूल पास कर चुकी थीं। उनकी भी पढ़ाई बंद थी। उनकी पढ़ाई बंद होने का कारण था बचपन में हुआ पोलियो। लेकिन जब उन्होंने मुझसे आगे पढ़ने की योजना के बारे में सुना तो उनकी आँखों में जो चमक आई उसे देखकर मुझे लगा कि ये साथ जरूर देंगी। असल में, मैं पढ़ने की इच्छा रखने वाली लड़कियों का एक ग्रुप बना रही थी। हमने इस ग्रुप में 19 लड़कियों को शामिल कर लिया। हमने पास की तहसील श्री माधोपुर में एक स्कूल में एडमिशन लिया और तय किया कि इस बात को गुप्त रखा जायेगा और परिवार पर इसका बोझ नहीं डाला जायेगा। स्कूल दूर था तो एक जीप की व्यवस्था की गयी जो सब लड़कियों को स्कूल ले जाने और वापस लाने के लिए थी। जीप की व्यवस्था के बावजूद हमें कई बार स्कूल पहुँचने में देर हो जाती थी। हमें अगर स्कूल पहुंचने में देर हो जाती तो विजयलक्ष्मी मैडम हमारा इंतजार करती थीं। उन्हें हमारे हौसलों को देख बहुत खुशी होती थी। मुझे अकसर मंजू के साथ आने की वजह से देर हो ही जाती थी क्योंकि बचपन में हुए पोलियो की वजह से उसे चलने में परेशानी थी। यह हमारे हौसलों की ही बात रही होगी कि अब बस वाले भी हमारा साथ देने लगे और 50 पैसे में हम स्कूल पहुँचने लगे। कुछ लोग थे जो हमारा साथ दे रहे थे, न सिर्फ स्कूल पहुँचाने में बल्कि गाँव वालों से यह बात छुपाने में भी कि गाँव की 19 लड़कियां पढ़ने जा रही हैं।

लेकिन सब कुछ अच्छा ही अच्छा चले तो काहे की कहानी। ग्यारहवीं की फाइनल परीक्षा का पहला परचा था उस दिन। हमने समय पर परीक्षा देने पहुँचने के लिए जीप बुक की। हम कुछ दूर ही आगे बढ़े थे कि रस्ते में पड़ने वाले महरौली गाँव के लड़कों ने जीप पर पत्थर फेंकने शुरू कर दिए। ये राजपूतों का गाँव था और यहाँ के लड़कों को यह सहन नहीं हो रहा था कि लड़कियां पढ़ने जा रही हैं। उन लड़कों के हाथों में लाठियां भी थीं। पत्थर तो लगातार बरस ही रहे थे। जीप की स्पीड खूब बढ़ाकर ड्राइवर अंकल ने किसी तरह हमें बचा तो लिया लेकिन परीक्षा देने लायक मन की स्थिति बची नहीं थी हमारी।

सामने परीक्षा पत्र था और मन में सौ सवाल कि अब तो घरवालों को पता चल ही जाएगा। क्या होगा तब? हमारी मैडम ने हमारी परेशानी भांपते हुए कहा, बेटा तुम लोग आराम से पेपर दो, सब ठीक हो जाएगा। तुम लोगों के अभिभावक आ गए हैं, वो बाहर हैं।

मैडम तो हमें समझा रही थीं लेकिन हमारे होश ही उड़ गए यह सुनकर जैसे–तैसे पेपर दिया। बाहर पिताजी खड़े थे साथ में पुलिस वाले भी थे। पुलिस वाले ने पिताजी से कहा, पुलिस की गाड़ी जीप के साथ जाएगी। आप चिंता न करें। लड़कियां सुरक्षित घर पहुँच जाएँगी। लेकिन वो बेचारे पुलिस वाले क्या जानें कि हमें असली डर तो पिताजी का ही था, लडकों से तो हम निपट ही लेते यह कौन कहे पुलिस वाले अंकल जी से। लौटते समय फिर पत्थरों की बरसात हुई लेकिन इस बार पुलिस साथ थी तो काफी लड़के पकड़े गए। लेकिन हम लड़कियों की असली लड़ाई तो घर जाकर शुरू होनी थी। जब घरवालों से डांट पड़नी थी कि पूरे साल छुपकर पढ़ाई कैसे की हमने। लेकिन शायद हमारे घरवालों ने कुछ समझा हमें और ज्यादा कुछ कहा नहीं। बल्कि अगले दिन के पेपर के लिए हर लड़की के घर से एक व्यक्ति पेपर दिलाने साथ गया। उसके बाद सारे पेपर घरवालों ने दिलवाए। हमारे लिए यह एक बहुत बड़ी लड़ाई जीतने जैसा था। मन से छुपकर पढ़ने जाने का भार हट गया था।

परीक्षाएं तो हो गयीं। लेकिन जिन्दगी की परीक्षायें तो बाकी ही थीं। कुछ लड़कियों के घरवालों ने परीक्षा के बाद लड़कियों की शादी करने की योजना बना ली। आसपास हमारे बारे में काफी बातें बनायी जाने लगी थीं। मेरे पिता जी ने भी मुझसे कहा कि बेटा प्राइवेट फॉर्म भर दे, रेगुलर तो न पढ़ा पायेंगे। लेकिन मैं मानने वाली नहीं थी। मेरे साथ मंजू दीदी भी थीं और कुछ लड़कियां भी शामिल थीं। गाँव वालों को यह समझ में आ गया था कि इन लडकियों में पढ़ने की इच्छा काफी है। कुछ

लोगों ने इस इच्छा का सम्मान किया और गाँव में ही कक्षा 12 की कक्षाएं चल सकें इसकी व्यवस्था की। इसके चलते गाँव की बाकी लड़कियों को भी पढ़ने की सुविधा मिल गयी। जिसमें मेरी छोटी बहनें भी शामिल थीं। आगे चलकर गाँव में इंटर कॉलेज बन गया और गाँव की लडकियों को हमारी तरह भागकर, झूठ बोलकर जाने की जरूरत नहीं पड़ी।

पिताजी को लगा इंटर पास कर लिया अब बहुत हुआ। लेकिन मैं कहाँ मानने वाली थी। मुझे तो कॉलेज जाना था, आगे की पढाई करनी थी। जैसे मेरे जीवन का एक ही लक्ष्य था पढ़ाई करना। मुझे लग रहा था मैं पढूंगी तो बहुत सारी लड़कियों के लिए रास्ते खुलेंगे। कॉलेज की पढ़ाई के लिए मुझे जयपुर जाना था। जो हमारे गाँव रीगस से 60 किमी दूर था। यक्ष प्रश्न यह था कि जब 17 किमी दूर पढ़ने जाने पर इतने पंगे हुए तो भला 60 किमी कौन जाने देता। मैं गाँव की पहली लड़की थी जो कॉलेज की पढाई करने की इच्छुक थी। मेरे सामने भी समस्या थी कि कैसे आगे बढ़ा जाए। कुछ पता नहीं, क्या विषय लें, कौन सा कॉलेज चुनें, किससे बात की जाय, पैसे कहाँ से आयेंगे आदि।

मुझे विद्या आंटी की याद आई। विद्या आंटी पापा के एक दोस्त डॉ. हरिलाल हैं, उनकी पत्नी हैं। पापा बताया करते थे कि कैसे हरि अंकल ने विद्या आंटी को शादी के बाद पढ़ाया। इन दिनों जयपुर में विद्या आंटी एक स्कूल चलाया करती थीं। विद्या आंटी जो उन दिनों गाँव में थीं, उनसे हमने बात की तो उन्होंने हमें ही समझाया कि तुम्हारे पिताजी तुम्हारी शादी करने वाले हैं, तुम्हारा कॉलेज बीच में छूट जायेगा इसलिए तुम आगे पढ़ने की बात को रहने दो। उनकी बात से मैं निराश नहीं हुई। जाने क्यों मैं किसी की भी नकारात्मक बात से निराश नहीं होती थी, ऐसा लगता था मैंने कुछ सुना ही नहीं।

लेकिन सब के बीच मुझे ध्यान आया कि मेरी तो सगाई हो चुकी है। वो तो 1987 में ही हो चुकी थी। और अब लड़के वालों की तरफ से शादी का दबाव बन रहा था। शायद लड़के वालों के मन में वो पत्थरबाजी वाले काण्ड का भी असर हुआ हो जिसके चलते वो शादी की जल्दी मचाये हों।

मेरी शादी के साथ मेरी बहन की शादी भी होनी थी। सगाई चोह्टन गाँव के एक परिवार में हुई थी। इन सब बातों के बीच मेरा दिमाग पढाई के पीछे भाग रहा था। हमने विद्या आंटी से बहुत जिद की। इतनी जिद कि उन्हें मानना ही पड़ा। उन्होंने जयपुर में भवानी निकेतन कॉलेज की प्रिंसिपल से बात करने को कहा। यह हमारे लिए राहत की सांस थी। हमारा कॉलेज में एडमिशन हो गया। अब अगली चुनौती थी घर। हमने प्रिंसिपल मैडम को सारे हालात बताये और कहा कि हम सप्ताह में एक दिन कॉलेज आया करेंगे और सारे नोट्स ले जाया करेंगे। इधर माँ को मनाया कि कुछ भी हो जाए वो पिताजी को कॉलेज के बारे में कुछ न बताएं।

पिताजी को कॉलेज के बारे में पता तो था नहीं, एक दिन वो प्यार में भरकर बोले, 'रीता बिटिया, तुम्हें आगे पढ़ने का मन था न, तुम ऐसा करो प्राइवेट फॉर्म भर लो।' उस समय फार्म निकले हुए थे। वो ये कहते हुए खुश थे कि बच्ची खुश हो जाएगी। उन्हें क्या पता कि बच्ची तो कॉलेज में एडमिशन लिए बैठी है। मैं पिताजी की बात पर चुप रही। जब मैं चुप रही तो वो चौंके, 'बोले उतर गया पढ़ने

का भूत? पहले तो पढ़ाई के पीछे जान देती थी।' उनके ऐसा कहने में कुछ परिहास भी था। तब मैंने पिताजी को सच बता दिया कि हम रेगुलर कॉलेज जा रहे हैं और पढ़ाई जारी है। अब पिताजी के सदमे में आने की बारी थी, हालाँकि वो चुप रहे।

सेकेण्ड इयर में मेरी शादी का राग फैल गया और मेरा शादी न करने का क्योंकि मुझे तो पढ़ना था। पढने की लगन देखकर मेरे मामा जी ने पापा से कहा, आप इन बच्चियों की सगाई तोड़ दो और इन्हें पढ़ने दो। शादी–वादी की टेंशन न लो मैं देख लूँगा लेकिन पापा कहाँ मानने वाले थे।

पापा की जिद के आगे मैं आखिर हार गयी। लेकिन मैंने यह जरूर किया कि पापा से कहा मेरी शादी तो ठीक है छोटी बहन जो अभी 17 साल की है उसकी शादी मत करो। पापा चाहते थे एक साथ शादी हो तो खर्च बचे। मैंने उन्हें बोला अगर आपने छोटी बहन की शादी की तो मैं पुलिस में रिपोर्ट करूंगी क्योंकि छोटी बहन नाबालिग है। हालाँकि यह धमकी चली नहीं और हम दोनों बहनों की शादी हो गयी।

अब एक तरफ शादी थी और दूसरी तरफ सेकेण्ड ईयर की परीक्षा। जिस दिन मेरी शादी थी, 26 अप्रैल को, उसी दिन पहला पेपर था सेकेंड ईयर का। मेरे मन में दुविधाओं का तूफान उठ रहा था। क्या होगा मेरा भविष्य, मेरी बहनें आगे कैसे पढ़ेंगी। बहरहाल, मैं इधर से पेपर देने जा रही थी सामने से बारात की गाड़ियाँ आ रही थीं। मेरा मन एकदम उचाट था। कलेजा धुकुर धुकुर कर रहा था। चाचा साथ थे जो पेपर दिलाने ले गए थे वो भी सबसे छुपकर।

जैसे–तैसे पेपर दिया, लौटकर शादी की और ससुराल रवाना हुई। दो दिन बाद मेरा अर्थशास्त्र का पेपर था इसलिए वापस मायके लौटना जरूरी था लेकिन इतनी जल्दी वापस भेजने को ससुराल वाले राजी नहीं थे। एक तो नया घर, अनजाने लोग, मन में अशांति, घर से छूटने का दुःख, मैं इतना रोई इतना रोई कि आज भी सोचकर हिल जाती हूँ। आखिर मेरे रोने से ससुराल वाले पिघले और उन्होंने चाचा के साथ वापस मायके भेज दिया। उन बेचारों को आज तक नहीं पता कि वह सारा रोना मायके की याद का नहीं पेपर देने के लिए था।

खैर, अब आगे की लड़ाई थी। आगे की पढ़ाई के बारे में तो सोचना भी गुनाह था। ससुराल वाले आगे पढ़ाने को कहाँ मानने वाले थे। पढ़ाई के चक्कर में कितनी बार मायके जाती मैं। एक दिन मैंने अपने पति से कहा, 'अगर आप हमें पढ़ने दोगे तो मैं मायके नहीं जाऊंगी और अगर पढ़ने नहीं दोगे तो मैं रहूंगी भले ही इस घर में लेकिन आपसे कोई रिश्ता नहीं रखूंगी।' जैसे तैसे मेरे पति माने।

इसके बाद मैंने अपने संयुक्त परिवार की जिम्मेदारी बहनों की पढ़ाई की जिम्मेदारी और पढ़ाई सब संभाली। बीए किया, एमए किया, बीएड किया और प्राथमिक विद्यालय भाटियों की ढाणी में बतौर शिक्षिका काम करना शुरू किया।

2001 से, मैं राजकीय प्राथमिक विद्यालय भाटियों की ढाणी में बतौर शिक्षिका हूँ। मैं यहाँ इस स्कूल की पहली शिक्षिका हूँ और तबसे मैं यहीं हूँ, इसी स्कूल में। जब मैंने यहाँ ज्वॉइन किया था तब यहाँ कोई बिल्डिंग नहीं थीं। मैंने सबसे पहले एक काम किया कि घर–घर जाकर लोगों से मेल–जोल बढ़ाया। इसके चलते लोगों ने बच्चों को स्कूल भेजना शुरू किया। गाँव के लोगों का मुझ पर भरोसा जम गया था पहले साल का नामांकन 33 बच्चों का था। स्कूल के लिए सिर्फ नामांकन होना तो काफी होता नहीं। हमारे पास तो बिल्डिंग भी नहीं थी और मैं थी एकल शिक्षक। गाँव के लोगों ने ही मेरी मुश्किलें आसान कीं। गाँव में एक ओतारा होता है जहाँ भाटियों के मेहमान रुका करते हैं। जब मेहमान नहीं होते थे तब वह ओतारा हमें स्कूल के लिए मिल जाता था। लेकिन जब मेहमान आते तो हमारा स्कूल पेड़ के नीचे लगा करता था। मैंने देखा बच्चों को पढ़ने में मजा आ रहा है। गाँववालों के भरोसे और बच्चों की लगन ने मुझे बहुत हौसला दिया।

शिक्षिका के तौर पर स्कूल आने वाली बच्चियों के संघर्ष को खूब अच्छी तरह से समझ पाती हूँ। मुझे अपने स्कूल की बच्चियों को देखकर वही जिम्मेदारी महसूस हुई जिसे मैंने ग्यारहवीं की परीक्षा देते समय महसूस किया था कि यह सिर्फ एक व्यक्ति की नहीं सभी लड़कियों की लड़ाई है। हर किसी को खासकर बच्चियों को पढ़ने के समान अवसर मिलने ही चाहिए। कितनी गर्मी में रेगिस्तान के बड़े–बड़े मैदान पैदल, कभी–कभी बिना चप्पल के पारकर जो लड़कियाँ पढ़ने आती हैं, उनमें मैं खुद को देख पाती हूँ। कोशिश करती हूँ इन लड़कियों का पढ़ना रुके नहीं। वो आगे भी पढ़ें और अपने सपनों को साकार कर सकें।

शिक्षा बहुत महत्वपूर्ण है लेकिन अभी भी यह हर किसी को उतनी आसानी से मुहैय्या नहीं है जितनी आंकड़ों में नजर आती है। अपनी मर्जी से आगे पढ़ने, अपनी मर्जी के विषय लेने जैसी छोटी दिखने वाली बातें आज भी बड़ी चुनौती हैं। रीता माहेश्वरी ने विकट हिम्मत और मेहनत से अपना सफर तय किया है और नयी पीढ़ी का हौसला बनकर खड़ी हैं। जो स्कूल आ गया उसे तो वो मन से पढ़ाती ही हैं जो स्कूल नहीं आया उसे लेने उसके घर तक जा पहुँचती हैं। 7 साल तक मैं यहाँ सिंगल टीचर रही। जाने कैसे कैसे दौर आये गये लेकिन स्कूल चलता रहा। गाँववाले मुझे अपनी बेटी की तरह मानते हैं। जब भी मैं किसी अभिभावक से मिलती हूँ वो मेरे सर पर हाथ रखकर खूब आशीर्वाद देते हैं। जब मैं स्कूल में लड़कियों को पढ़ते देखती हूँ तो लगता है खुद को ही देख रही हूँ।'

(रीता माहेश्वरी की प्रतिभा कटियार से हुई बातचीत पर आधारित)